सीख की कहानियां

सन्तराम वत्स्य

सीख की कहानियां

सन्तराम वत्स्य

विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली

प्रथम संस्करण : १९७४

मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

प्रकाशक : विद्यार्थी प्रकाशन
के-७१, कृष्णानगर
दिल्ली-११००५१

मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

दो शब्द

कथाओं के द्वारा धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा और राजनीति की शिक्षा देने की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है।

पुराण, जातक कथाएं, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थ इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। हमारे देश के सन्त, महात्मा और आचार्य भी ज्ञान की गूढ़ बातों को दृष्टान्तों द्वारा जनसाधारण को समझाने में सफल हुए हैं।

इधर धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्महीनता कर दिए जाने से जो अनर्थ हुआ है, उसका परिणाम हमारे सामने है। रही-सही कमी को हत्या, डकैती और जासूसी उपन्यासों ने पूरा कर दिया है। घटिया फिल्मों ने भी हमारे जन-मानस को बिगाड़ने में बहुत सहायता की है।

इन सारे धक्कों को झेलने के लिए सुदृढ़ चरित्र की आवश्यकता है। यद्यपि चरित्र मूलतः घर, पाठशाला और समाज के परिवेश में ही निर्मित होता है पर सत्साहित्य भी चरित्र-निर्माण का महत्त्वपूर्ण घटक है।

सद्गुणों के विकास की प्रेरणा देना सदा ही महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। आज इसका महत्त्व और भी अधिक है। ये कहानियां इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत की जा रही हैं।

इनकी भाषा सरल सुबोध है। ये बिना किसी की सहायता के पढ़ी जा सकती हैं। रेखाचित्रों ने इन्हें और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है।

आशा है कि ये कहानियां चाव से पढ़ी जाएंगी और वांछित प्रभाव डालेंगी।

—लेखक

क्रम

ईश्वर ने संसार बनाया	५
बाग का रखवाला	८
सच्चा बेटा	१०
सुख और दुःख का साथी	१३
न्याय की घंटी	१५
नम्र बनो	१७
बन्दर भाग गए	१९
घायल हंस	२१
विक्रमादित्य का न्याय	२४
ईमानदार लकड़हारा	२७
दो तोते	२९
मीठा बोलो	३१
मां का कहना क्यों नहीं माना	३३
ठगों से सावधान	३५
स्वाभिमानी बालक	३७
सच्ची योग्यता	३९

ईश्वर ने संसार बनाया

एक था नास्तिक । नास्तिक उसे कहते हैं, जो ईश्वर को न माने ।

उसका पुत्र पाठशाला में पढ़ता था । इस पाठशाला में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी । इसलिए नास्तिक का पुत्र धर्म को मानता था । वह मानता था कि ईश्वर है और ईश्वर ने ही संसार की रचना की है । उसने पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तारे बनाए हैं । दिन-रात, ऋतुएं, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष आदि सभी नियम से आते-जाते हैं ।

पाठशाला में पढ़नेवाला यह बालक प्रतिदिन प्रातः ईश्वर की प्रार्थना भी करता था । उसके पिता को उसका प्रार्थना करना और ईश्वर को मानना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था । वह कहता—तुम प्रार्थना में व्यर्थ ही समय नष्ट करते हो । इससे क्या लाभ ! इतना देर यदि और अधिक पढ़ो तो तुम्हारी योग्यता बढ़े ।

एक दिन पुत्र ने बड़ी नम्रता से पिता से पूछा, "पिताजी, यदि ईश्वर नहीं है तो यह संसार किसने बनाया है ?"

पिता ने उत्तर दिया, तुम अभी बच्चे हो । इन बातों को नहीं समझते हो । यह सब अपने-आप होता है । जैसे सूर्य की गर्मी से जल भाप के रूप में बदल जाता है । भाप उड़कर आकाश में इकट्ठी होती है और बादल बन जाती है । बादल

अनुकूल वातावरण मिलने पर बरस पड़ता है। अब तुम्हीं बताओ, इसमें ईश्वर ने तो कहीं कुछ किया नहीं। सब कुछ अपने-आप हो गया। इसी तरह संसार भी बन गया। जंगल की ही बात को लो। जंगल को कोई लगाता थोड़े ही है। वह तो अपने-आप उगता है। पुराने वृक्ष सूखकर नष्ट हो जाते हैं। नए उग आते हैं। गर्मी के कारण गति उत्पन्न होती है और पौधों तथा प्राणियों की सृष्टि हो जाती है।

एक दिन लड़के ने पाठशाला में एक बढ़िया-सा चित्र बनाया। यह चित्र एक जंगल का दृश्य था और इसमें जंगली पशु भी चित्रित किए हुए थे।

उसने वह चित्र अपने पिताजी के कमरे में रख दिया।

जब उसके पिताजी ने वह सुन्दर चित्र देखा तो बहुत प्रसन्न हुए। लड़के को बुलाकर पूछा, "यह चित्र किसने बनाया है ?"

पुत्र ने कहा, "किसी ने भी तो नहीं बनाया। अपने-आप ही बन गया।"

पिता ने पुत्र की अटपटी बात सुनकर कहा, "अपने-आप कैसे बन गया ?"

पुत्र ने उत्तर दिया, "पाठशाला के चित्रकला-कक्ष में मेज पर कागज रखे हुए थे। वहीं पर रंग भी थे। गर्मी के कारण रंगों में गति आई। वे कागज पर बिखर गए और यह सुन्दर चित्र बन गया।

अब तो पिताजी को बड़ा क्रोध आया। लड़के की यह हिम्मत कि मेरे साथ मजाक करे। वह तमककर बोले, "तू अपने पिता के साथ मजाक करता है। यही शिक्षा तुझे पाठशाला में दी जाती है ?"

पुत्र ने कहा, "पिताजी, यदि इतना बड़ा संसार किसी के बिना बनाए बन सकता है तो यह चित्र किसी के बिना बनाए क्यों नहीं बन सकता ?"

अब उसके पिताजी समझे कि बात क्या है !

बाग का रखवाला

एक इब्राहीम नामक महात्मा थे। वे घूमते-घूमते एक धनी आदमी के बगीचे में जा पहुंचे। बगीचे के मालिक ने समझा कि यह कोई मजदूर है। वह बोला, "अगर तुम बगीचे की रखवाली का काम करना चाहो तो कर सकते हो। हमारे पास जगह खाली है।"

इब्राहीम ने नौकरी कर ली। वे बगीचे की रखवाली भी करते और भगवान् का भजन भी।

जब इब्राहीम को बगीचे में रखवाली करते कई दिन हो गए तो एक दिन बगीचे का मालिक अपने धनी मित्रों के साथ बगीचे में आया।

बगीचे में आम पके हुए थे। मालिक ने इब्राहीम को पके आम तोड़ लाने के लिए कहा।

इब्राहीम पके हुए आम तोड़ लाया और मालिक के आगे रख दिए।

मालिक ने आम चखे तो वे खट्टे थे।

मालिक ने इब्राहीम को बुलाकर कहा, "ये सारे आम खट्टे हैं। दूसरे पेड़ के आम लाओ।"

इब्राहीम दूसरे पेड़ से पके आम तोड़कर लाया तो वे भी खट्टे निकले।

अब तो बगीचे के मालिक को क्रोध आ गया। उसने इब्राहीम से कहा,

"तुम्हें इतने दिन नौकरी करते हो गए पर अभी तक यही पता नहीं लगा कि किस पेड़ के आम खट्टे हैं और किस पेड़ के मीठे ?"

महात्मा इब्राहीम ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "आपने मुझे बगीचे की रखवाली के लिए रखा है। आम खाने का अधिकार मुझे नहीं दिया है। बिना खाए मुझे इस बात का पता कैसे लग सकता है कि किस पेड़ के आम खट्टे हैं और किसके मीठे ?"

मालिक अपने नौकर की ईमानदारी से बहुत अधिक प्रभावित हुआ।

सच्चा बेटा

एक दिन पनघट पर चार स्त्रियां पानी भर रहीं थीं। वे आपस में अपने-अपने बेटों की प्रशंसा कर रही थीं।

एक कह रही थी, "मेरा बेटा बड़ा होनहार है। उसका स्वर बड़ा मधुर है। जब वह गाने लगता है तो लोग अपना काम-धाम छोड़कर सुनने लगते हैं। पाठशाला के उत्सव में उसने गाना गाया तो उसे पुरस्कार मिला। उसे 'बाल तानसेन' की उपाधि मिली है।

दूसरी बोली, "मेरा बेटा तो पहलवान है। अभी उमर ही क्या है! पर अपने से दुगुने भारी पहलवान को भी अखाड़े में चित्त कर देता है। उसे कमी भी किस बात की है। मैं उसे जितना खाना चाहे, उतना दूध-घी खिलाती हूं। बड़ा होकर वह 'भारत-केसरी' बनेगा। अखाड़े के साथियों ने तो उसका नाम ही 'भीमसेन' रख दिया है।"

अब तीसरी की बारी थी। वह अपने बेटे की प्रशंसा के पुल बांधते हुए बोली, "बहिन! मेरा बेटा तो अक्ल का खज़ाना है। अपनी कक्षा में सदा प्रथम आता है। पुस्तकों में जो कुछ लिखा है, वह उसे सब जबानी याद है। मुहल्ले-भर के लड़के उससे प्रश्न समझते हैं। भगवान् उसे लम्बी उमर दे। वह एक दिन बड़ा विद्वान् बनेगा।"

अब चौथी स्त्री की बारी थी। किन्तु वह चुप रही।

उसे चुप देख तीनों बोलीं, "बहिन, तुम भी तो अपने बेटे के बारे में कुछ बताओ।"

वह बोली, "क्या बताऊं। बताने वाली कोई अनोखी बात तो उसमें है नहीं। वह तो सीधा-साधा लड़का है। वह न तो गवैया है और न पहलवान। न ही बड़ा पढ़ाकू। हां, वह स्वस्थ है, देखने में भी बुरा नहीं है। बड़ा आज्ञाकारी है। पढ़ता भी है, घर का काम भी करता है।"

पटघट पर एक ओर एक बूढ़ा आदमी बैठा हुआ था। वह इन स्त्रियों की बातें सुन रहा था।

चारों स्त्रियों ने अपने घड़े उठाकर सिर पर रखे ही थे कि इतने में पहली स्त्री का लड़का आता दिखाई दिया।

वह एक गीत की पंक्ति को गाता जा रहा था। उसका स्वर सचमुच बहुत

मीठा था। उसकी मां की नजर उस पर पड़ी तो वह मारे प्रसन्नता के चमक उठी। अपनी सहेलियों को दिखाते हुए उसने कहा, "वह देखो, मेरा बेटा गीत गाता हुआ जा रहा है।"

वे कुछ ही पग चली होंगी कि दूसरी का बेटा भी उधर से आ निकला। चौड़ी छाती फुलाए वह पहलवानों जैसी मस्त चाल से चल रहा था। उसकी मां ने भी सहेलियों को दिखाते हुए कहा, "देखो, वह जा रहा है, मेरा भीमसेन।"

थोड़ी देर में तीसरी का बेटा भी आ निकला। वह कुछ सोचता हुआ चला जा रहा था। उसकी मां ने भी सहेलियों को दिखाते हुए कहा, "देखो, वह जा रहा है, मेरा लाल। यह हर घड़ी कुछ न कुछ सोचता-विचारता ही रहता है।"

इसके बाद चौथी स्त्री का बेटा भी सामने से आता दिखाई दिया।

अपनी मां को देखते ही वह लपक कर उसके पास आया और मां के सिर से घड़ा उतार कर अपने कंधे पर रखकर घर की ओर चल दिया।

यह देखकर पहले वाली तीनों स्त्रियां हक्की-बक्की रह गईं।

पनघट पर बैठा बूढ़ा भी उठ आया और गांव की ओर चलने लगा। उसने चौथी स्त्री से कहा, "यों तो कहने को बेटों-बेटियों से घर भरे पड़े हैं, पर तेरा बेटा ही सच्चा बेटा है।"

सुख और दुःख का साथी

एक शिकारी ने एक हिरन पर जहर में बुझा हुआ तीर छोड़ा। निशाना चूक गया और तीर एक पेड़ में जा लगा। जहर के प्रभाव से वृक्ष सूख गया। उस पेड़ के खोखले में बहुत समय से एक तोता रहता था। उसका पेड़ से बहुत अधिक लगाव हो गया था। इसलिए उसने उसे नहीं छोड़ा। उसने कोई चीज खाने-पीने के लिए खोखले से बाहर आना बन्द कर दिया। उस धर्मात्मा तोते

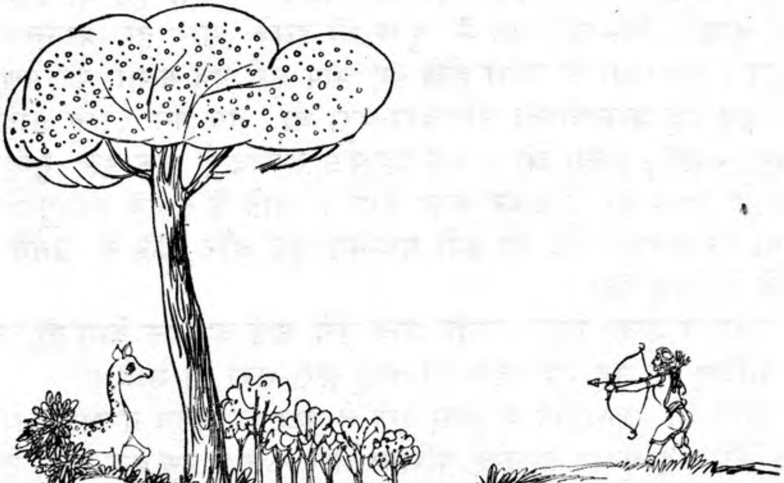

ने अपने मित्र पेड़ के साथ ही मरने का निश्चय कर लिया। तोते के त्याग, सहनशीलता, दुःख और आत्मबलिदान की भावना से वातावरण में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया।

इन्द्र देवता का ध्यान इस ओर गया और वह तोते के पास आया। तोते ने इन्द्र को पहचान लिया। इन्द्र बोला, "प्यारे तोते! इस पेड़ में न तो पत्तियां हैं, न फल। कोई भी पक्षी अब इस पर वास नहीं करता। तुम्हारे सामने एक विस्तृत वन है जिसमें अनेक तरह के वृक्ष हैं, जिन पर फल और फूल लगे हुए हैं। उन पर पत्तियों से ढके अनेक खोखले हैं जिनमें तुम सुरक्षित और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हो। अब यह वृक्ष हरा-भरा नहीं होगा। यह सब कुछ जानते हुए भी तुम दूसरे हरे-भरे वृक्ष पर क्यों नहीं चले जाते?" उस धर्मात्मा तोते ने उस पेड़ के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हुए इन्द्र को उत्तर दिया, "हे देवताओं के राजा! मैं इस वृक्ष पर पैदा हुआ और फिर इतना बड़ा हुआ हूं। यहां मैंने कई अच्छी बातें भी सीखीं और इसने अपने बच्चे की तरह मेरी देख-भाल भी की। मुझे खाने के लिए मीठे फल भी दिए और शत्रुओं से मेरी रक्षा की। अब मैं इसे इस चिन्ताजनक स्थिति में छोड़कर अन्यत्र कैसे जा सकता हूं? इसके साथ खुशियां निभाकर अब मैं दुःख भी इसके साथ ही प्रसन्नतापूर्वक सहन करूंगा। देवताओं के राजा होते हुए आप मुझे यह गलत परामर्श क्यों दे रहे हैं? जब यह शक्तिशाली और हरा-भरा था, तब मैंने इसके आश्रय में अपना जीवन व्यतीत किया और अब यह कैसे सम्भव है कि इस सूखे हुए वृक्ष को मैं इसके भाग्य पर छोड़कर चला जाऊं।" तोते के सुन्दर, स्नेहपूर्ण और मनोहर वचनों को सुनकर इन्द्र को बड़ी प्रसन्नता हुई और तोते से उसने कोई वरदान मांगने के लिए कहा।

तोते ने उत्तर दिया, "यदि आप मुझे कोई वरदान देना ही चाहते हैं तो यह दीजिए कि यह पेड़ पहले की तरह हरा-भरा हो जाये।"

तोते की इच्छापूर्ति के लिए इन्द्र ने वृक्ष पर अमृत बरसाया। पेड़ फिर से पहले की तरह सुन्दर शाखाएं, पत्तियां और फल धारण कर खिल उठा। तोते को मानो स्वर्ग की प्राप्ति हो गई।

न्याय की घंटी

मुसलमान शासकों में अकबर का नाम अधिक प्रसिद्ध है। अकबर न्याय-प्रिय शासक था। वह हिन्दुओं के साथ भी अच्छा व्यवहार करता था। अकबर के राज्य में न्याय बड़े अच्छे ढंग से होता था। यही कारण था कि उसके राज्य में अराजकता नहीं थी। अकबर के समय में राय जयसिंह बीकानेर के राजा थे। उनके छोटे भाई का नाम पृथ्वीराज था। पृथ्वीराज बहुत अच्छे कवि थे।

एक बार पृथ्वीराज ने अकबर की न्याय-प्रियता की परीक्षा लेनी चाही। उसने शहर में एक ऐसी गाय ढूंढ़ी जो बराबर इधर-उधर घूमती रहती थी। पृथ्वीराज ने कागज पर एक कविता लिखी और गाय के गले में बांध दी। कविता का भाव यह था—"जो अपने मुंह में तिनका रखता है उसे कोई नहीं मारता। मैं भी रात-दिन तिनके चरती हूं। मैं बड़ी ही दीन वाणी में रंभाती हूं। मैं लोगों को सदैव दूध, घी, दही आदि देती हूं। मेरे बेटे—बैल—भूमि जोत-कर फसल उगाते हैं। चाहे कोई मुसलमान हो या हिन्दू, मैं सबको एक-सा दूध-घी देती हूं। मैं जब मर जाती हूं तब मेरे चमड़े से जूतियां बनती हैं, नगाड़े मढ़े जाते हैं। मैं बादशाह अकबर महाराज से प्रार्थना करती हूं कि मैं भला अपने जीवन में किसी का क्या बिगाड़ती हूं जो मेरी हत्या की जाती है, मेरा गला काट दिया जाता है ? मैं न्याय मांगती हूं।

इस प्रकार की प्रार्थना को अपने गले में लटकाए हुए वह गाय फिरती-फिरती बादशाह के महल के पास पहुंच गई ।

महाराज अकबर ने अपने महल की अदालत की दीवार के साथ एक जंजीर लटका रखी थी । नगर में जो भी दुखिया होता था या जिस पर कोई अत्याचार हुआ होता था, उस जंजीर को खींचता और अदालत में घंटी बजती । महाराज उसे दरबार में बुलाकर उसके दुःख की कथा को सुन कर न्याय करते थे ।

गाय अदालत की जंजीर से सिर मारने लगी । ऐसा होते ही अदालत में घंटी बजने लगी । बादशाह अकबर ने मन में सोचा—कोई दुःखी प्राणी है । वे महल से बाहर आए और देखने लगे । गाय को देखकर उन्होंने बात टाली नहीं । गाय के पास आए और उन्हें उसके गले में लटका कागज का टुकड़ा दिखाई दिया । उन्होंने उस कागज को खोला । उस पर लिखी कविता को पढ़ा और पढ़ कर बड़े दुःखी हुए । उनके मन में इतनी करुणा आई कि उसी समय से गोहत्या-बंदी की घोषणा कर दी ।

नम्र बनो

एक सन्त थे । वे बहुत बूढ़े हो गए थे । जब उनका अन्त समय आया तो उनके सभी शिष्य और भक्त इकट्ठे हो गए । वे सब बोले, "महाराज ! आप इस शरीर को छोड़ने वाले हैं । कृपा करके हमें ऐसा अन्तिम उपदेश देते जाइये जिससे हमारा जीवन शान्ति से बीत सके ।"

सन्त ने लेटे-लेटे कहा, "अच्छा, जरा पहले मुझे यह बताओ कि मेरे मुंह में कितने दांत हैं ?"

सबने कहा, "महाराज ! आपके मुंह में इस समय एक भी दांत नहीं है । कई वर्ष हुए एक-एक करके सभी गिर चुके हैं ?"

सन्त बोले, "अच्छा, जरा देखकर बताओ, जीभ तो है न !"

सभी बोले, "गुरुजी, जीभ तो ज्यों की त्यों है । ।"

सन्त बोले, "देखो, यह जीभ, जब मेरा जन्म हुआ तब भी थी । किन्तु दांत बाद में पैदा हुए और गिरकर फिर दोबारा पैदा हुए । फिर कई बर्ष पहले ही गिर चुके हैं और यह जीभ तब से अब तक ज्यों की त्यों है । इसका क्या कारण है ?"

सबने कहा, "गुरुदेव ! हम नहीं समझ पा रहे हैं कि इसका क्या कारण है ?"

तब वे ज्ञानी सन्त बोले, "देखो, यह जीभ कितनी लचीली है। बत्तीस दांतों के बीच रहती रही और फिर भी कभी कटी नहीं और दांतों के न रहने पर भी ज्यों की त्यों है। दांत कठोर थे। उन्हें अपनी कठोरता का अभिमान था। यह कठोरता ही उनके विनाश का कारण बनी।

"मेरा आपको यही अन्तिम उपदेश है कि नम्र बनो। जीवन में नम्रता को अपनाओ। पर एक बात का ध्यान रखना, कहीं कायरता को ही नम्रता मत मान लेना। नम्रता चरित्र की ऊंचाई है, जबकि कायरता गिरावट।"

बन्दर भाग गए

स्वामी विवेकानन्द पुण्यक्षेत्र काशी में घूम रहे थे। उन्हें एक ऐसे मार्ग से जाना पड़ा, जहां एक ओर तालाब था और दूसरी ओर सीधी दीवार। काशी में बन्दरों की भरमार है और यहां के बन्दर हैं भी बहुत शैतान। स्वामीजी के पास एक पोटली-सी थी। उसीके कारण बन्दर उनका पीछा करने लगे। बन्दर बार-बार पोटली छीनने के लिए झपटते। स्वामीजी पहले तो उन्हें हाथ से हटाते रहे, पर वे कहां मानने लगे। बन्दर घुड़की प्रसिद्ध है ही। उन्हें लगा कि ये बन्दर अभी मुझ पर झपट पड़ेंगे, सो वे भागने लगे। अब तो बन्दर उन्हें और भी डराने लगे। कुछ लोगों ने दूर से देखकर कहा, "स्वामीजी, जल्दी भागो।" वे और भागे, तो भी बन्दरों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और खों-खोंकर लपटने-झपटने लगे।

इतने में किसी अनुभवी व्यक्ति ने दूर से देखकर कहा, "स्वामीजी, भागिए मत। बन्दरों का मुकाबला कीजिए।"

यह सुनकर ही स्वामीजी भागना छोड़, तनकर खड़े हो गए। बन्दर भी जहां-के-तहां रुक गए। फिर तो स्वामीजी स्वयं बन्दरों की ओर लपके और उन्हें भगाने लगे।

बन्दरों ने उनका विकराल रूप देखा तो भाग खड़े हुए। इतने में वे

सज्जन भी वहां आ पहुंचे, जिन्होंने स्वामीजी को मुकाबला करने के लिए कहा था। वे बोले, "आप भाग क्यों रहे थे ? आपको बन्दरों को भगाना चाहिए था।" स्वामीजी बोले, "कैसे भगाता ? मैं तो खाली हाथ था।"

वे सज्जन बोले, "अब आपने कैसे भगा लिया ? अब भी तो आप खाली हाथ ही थे।"

अब तो स्वामीजी को अपनी भूल मालूम हुई और वे झेंप गए। तब वे सज्जन समझाते हुए बोले, "हाथ खाली हों या हाथ में हथियार हो, इससे कुछ होता-जाता नहीं। मन में शक्ति होनी चाहिए। मन से सब कुछ होता है। मन के हारे-हार है, मन के जीते-जीत।"

घायल हंस

राहुल की माता का नाम यशोधरा था। राहुल के पिता का नाम गौतम। जब राहुल छोटा बच्चा ही था तो गौतम चुपचाप जंगल में तपस्या करने चले गये थे। यशोधरा को अपने पति की बहुत याद आती थी। पर बेचारी क्या करती! कहां जाती!!

इधर राहुल बड़ा होने लगा। बालक अपनी माता से नये-नये प्रश्न करता। यशोधरा उनका उत्तर देती। वह नई-नई कहानियां सुनाने को कहता। मां उसे प्रतिदिन कोई न कोई कहानी सुनाती।

एक दिन राहुल ने कहा—मां आज कोई अच्छी-सी कहानी सुनाओ।

यशोधरा बोली—हंस की कहानी सुनेगा बेटा?

राहुल ने खुश होकर कहा—हां मां, हंस की कहानी सुनाओ। हंस सफेद-सफेद पक्षी होता है न—प्यारा-प्यारा!

यशोधरा—हां बेटा, उसीकी कहानी सुनो।

प्रातःकाल था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। तुम्हारे पिता बाग में सैर कर रहे थे। बाग में भांति-भांति के फूल खिले थे। सारा बाग सुगन्धि से महक रहा था। पक्षी चहचहा रहे थे। तुम्हारे पिता वहां सैर कर रहे थे।

राहुल—हां मां, तुमने बताया था कि पिता जी बड़े सवेरे सैर को निकल

जाते थे ।

यशोधरा—हां तो कहानी सुनो । तुम्हारे पिता बाग में सैर कर कर रहे थे । अचानक एक हंस ऊपर से गिरा । वह घायल था । उसका एक पंख टूट गया था ।

तुम्हारे पिता ने उसे उठाकर गोद में ले लिया और प्यार से हाथ फेरने लगे ।

राहुल—फिर क्या हुआ ?

यशोधरा—फिर पीछे से शिकारी आ गया । उसने तुम्हारे पिता को कहा—'लाओ, पक्षी दो ।' तुम्हारे पिता ने कहा—'मैं नहीं दूंगा ।'

राहुल—फिर क्या हुआ ?

यशोधरा—फिर दोनों आपस में झगड़ने लगे । शिकारी कहता—'पक्षी मेरा है, मैंने इसे मारा है ।' तेरे पिताजी कहते—'पक्षी मेरा है, मैंने इसे उबारा है ।' तब वे दोनों न्यायालय में गये । पहले शिकारी ने अपनी शिकायत की । फिर तुम्हारे पिता ने अपना पक्ष रखा । सभी ने दोनों की बातें सुनीं ।

राहुल—निर्णय क्या हुआ मां ?

यशोधरा—राहुल पहले तुम बताओ, क्या निर्णय होना चाहिए। तुम किसी का पक्ष न लो। न्याय करो।

राहुल—(मुस्कराकर) मां, मैं तो कहानी सुन रहा हूं। मेरा निर्णय क्या होगा। फिर भी तुमने पूछा है तो सुनो। एक ने हंस को घायल किया, उसे कष्ट दिया। दूसरे ने हंस की रक्षा की, उसे प्यार दिया। न्याय दया सिखाता है। इसलिए हंस दूसरे को मिलना चाहिए।

यशोधरा—(बहुत प्रसन्न हो जाती है) वाह मेरे लाल ! तुमने तो बिल्कुल ठीक निर्णय किया। न्यायालय में भी यही निर्णय हुआ था कि हंस तुम्हारे पिता को दिया जाए।

राहुल—फिर वह हंस पिता जी को मिला ?

यशोधरा—हां मेरे लाल, हंस उन्हें दे दिया। उन्होने हंस के घावों को साफ किया। उस पर दवा लगाई।

राहुल—हंस बहुत खुश हुआ होगा मां !

यशोधरा—हां बेटा।

विक्रमादित्य का न्याय

महाराज विक्रमादित्य का न्याय प्रसिद्ध है। उनके राज्य में छोटे-बड़े, गरीब-अमीर सभी के लिए एक जैसा कानून था। उनको अपनी प्रजा बहुत प्यारी थी। प्रजा के दुःख-सुख देखने के लिए वह रात में वेश बदलकर घूमा करते थे।

एक रात विक्रमादित्य अपने अंग-रक्षक सैनिक के साथ घूमने निकले। चांदनी रात थी। हवा चल रही थी। मौसम सलोना था। हरे-भरे खेत और पहाड़ों की सुन्दर छटा को देखकर वे अपने आपको भूल गए। घोड़े को ऐड़ लगाई। हवा से बातें करता घोड़ा भाग निकला। अंग-रक्षक सैनिक पीछे छूट गया।

मालिक को मस्त देखकर घोड़ा भी मस्त हो रहा था। खेतों की मेड़ पर उगे हुए हरे पौधों पर घोड़े का जी ललचाया। महाराज विक्रमादित्य घोड़े से उतर गए। खेत की भीनी-भीनी महक और लहलहाती हुई फसलों ने उनका मन मोह लिया। घोड़े से उतरते समय अनाज के कुछ पौधे उनके पैरों तले कुचल गए। लेकिन वे मुग्ध थे। खोए हुए थे।

"कौन है रे।" रात के सन्नाटे को चीरती हुई आवाज़ आई। महाराज चौंके। उन्हें ध्यान आया कि वह खेत में खड़े हैं। जब तक वे कुछ उत्तर दें कि किसान वहां आ गया और कड़ककर बोला, "जानते हो यह महाराज विक्रमादित्य का

राज्य है। तुम अमीर हो तो क्या ? कानून सबके लिए एक है।"

घबराई हुई आवाज में महाराज ने पूछा, "लेकिन भइया, मैंने ऐसा क्या बिगाड़ा है जो तुम इतना क्रोध कर रहे हो।"

"क्या बिगाड़ा है ? तुमने खेत में घोड़ा डालकर किसान को सताया है। फसलों को पैरों से रौंदा है। खेत उजाड़ने की कोशिश की है। ऊपर से पूछते हो क्या बिगाड़ा है ? तुम्हें इसकी सजा मिलेगी।"

महाराज विक्रमादित्य मन में खुश हो रहे थे। उन्होंने किसान से पूछा, कौन-सी सजा ?"

किसान ने जवाब दिया, "तुमने सात पौधे बर्बाद किए हैं। तुम्हारी नंगी पीठ पर सात कोड़े पड़ेंगे।" महाराज ने पीठ खोल दी और किसान से कहा, "मैं सजा भुगतने को तैयार हूं।"

सड़ाक से एक कोड़ा महाराज विक्रमादित्य की पीठ पर पड़ा। इतने में अंगरक्षक सैनिक वहां पहुंच गया। उसने महाराज को देखकर प्रणाम करते हुए कहा, "महाराज विक्रमादित्य की जय !"

किसान के हाथों के तोते उड़ गए। कोड़ा हाथ से गिर गया। थर-थर कांपते हाथों को जोड़कर वह महाराज के आगे आ गिरा। विक्रमादित्य की आंखों से आग बरसने लगी। उन्होंने सख्त आवाज में सैनिक से कहा, "तुमने भूल की अंगरक्षक।" उनका चेहरा तमतमा रहा था। किसान को आज्ञा देते हुए वे बोले, "किसान, बाकी कोड़े लगाओ। यदि एक भी हाथ हल्का पड़ा तो तुम अपने परिवार और इस सैनिक के साथ तलवार के घाट उतार दिए जाओगे।"

किसान की आंखों में पानी भर आया। विक्रमादित्य पर दुगने जोर से कोड़े पड़ने लगे। सात कोड़े मारने के बाद किसान विक्रमादित्य के पैरों में लोट गया। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे। विक्रमादित्य ने उसे उठाया। अपने सीने से लगा लिया। जेब से मुट्ठी भर हीरे निकालकर उन्होंने किसान के हाथ में रख दिए। फिर कहा, "तुमने मेरी भूल की सजा दी। यह अच्छा किया। अधिकार पाकर बावला बनना बुरा है—न्याय का नियम राजा-प्रजा सभी पर एक जैसा लागू होता है।"

ईमानदार लकड़हारा

नदी के किनारे एक पेड़ था। उस पेड़ पर से एक लकड़हारा लकड़ी काट रहा था। अचानक उसके हाथ का कुल्हाड़ा नीचे गिर पड़ा और पानी में जा पड़ा। नदी काफी गहरी थी। लकड़हारा तैरना नहीं जानता था। इसलिए वह पेड़ से उतरा और तट पर बैठ कर रो-रो कर कहने लगा —अब मैं कुल्हाड़ा कहां से लाऊंगा। अब मैं लकड़ी कैसे काटूंगा। अब मैं बच्चों का पेट कैसे पालूंगा।

लकड़हारे का रोना सुनकर जल के देवता वहां पानी में से निकले। उन्होंने उनसे रोने का कारण पूछा।

लकड़हारे ने कहा—"मेरा कुल्हाड़ा पानी में गिर पड़ा है।" यह सुनकर जल के देवता पानी में घुसे और सोने का कुल्हाड़ा लेकर फिर बाहर निकले। कुल्हाड़ा लकड़हारे की ओर बढ़ाते हुए कहा यह लो अपना कुल्हाड़ा।

लकड़हारे ने कहा—"देव ! यह मेरा कुल्हाड़ा नहीं है।" इस पर देवता ने फिर गोता लगाया और थोड़ी देर बाद चांदी का कुल्हाड़ा लेकर बाहर निकले। और लकड़हारे को पूछने लगे, "क्या यह तुम्हारा कुल्हाड़ा है ?"

लकड़हारे ने सिर हिला दिया और कहा—"नहीं, यह भी मेरा नहीं है।" यह सुनकर जल के देवता ने फिर तीसरी बार गोता लगाया और लोहे का कुल्हाड़ा

पानी में से निकाल लाए।

कुल्हाड़े को देखते ही लकड़हारा खुशी से चीख पड़ा, "हां यही मेरा कुल्हाड़ा है। यही मेरा कुल्हाड़ा है।"

लकड़हारे की इस ईमानदारी पर जल के देवता उस पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शेष दोनों कुल्हाड़े भी उसको पारितोषिक के रूप में दे दिए।

दो तोते

एक बेहलिया जाल फैलाकर पक्षियों को पकड़ता था। एक बार उसके जाल में दो तोते के बच्चे फंस गए। उन्होंने अभी पंख निकाले ही थे और उड़ना सीख रहे थे।

उन्हें बेचने के लिए वह जंगल से नगर की ओर चल पड़ा। जंगल के छोर पर डाकुओं की एक बस्ती थी। वह बहेलिया अनेक बार इस ओर आता-जाता था, इसलिए डाकुओं से उसकी जान-पहचान हो गई थी। उसे प्यास लगी हुई थी, इसलिए वह पानी पीने डाकुओं की बस्ती में चला गया।

उस बस्ती के एक डाकू ने तोते का एक बच्चा पालने के लिए मोल ले लिया। पानी पी और कुछ सुस्ताकर बहेलिया नगर की ओर चल पड़ा। अब उसके पास तोते का एक ही बच्चा बेचने को रह गया था। उसने सोचा कि यदि यह भी कहीं आस-पास ही बिक जाए तो नगर तक जाने से बच सकता हूं।

रास्ते के किनारे एक ऋषि का आश्रम था। वह पिंजरा लिए वहां पहुंचा। ऋषिपत्नी को मां से बिछुड़े इस तोते के बच्चे पर बड़ी दया आई। पता नहीं यह किस के हाथ में पड़ेगा और कैसा दुःख पाएगा, यह सोच उन्होंने उसे मोल ले लिया।

बहेलिये का काम हो गया था। वह अपने घर को चल दिया।

कुछ समय बाद एक दिन सांझ को वह बहेलिया ऋषि के आश्रम में जा निकला। उसे आता देखकर पिंजरे में बैठा तोता कहने लगा, "अतिथि आया है, अतिथि। इसे बैठने को आसन दो। आइये, बैठिये।"

बहेलिया उसकी इन बातों से बड़ा प्रभावित हुआ। जब वह चलने लगा तो उसने ऋषि से पूछा, "यह तोता इतना समझदार कैसे बन गया ?"

ऋषि ने उसे समझाया, "इसमें आश्चर्य की क्या बात है। यह प्रतिदिन जैसा सुनता है, वैसा ही बोलता है।"

वहां से चलकर वह रात को डाकुओं की बस्ती में पहुंचा। रात वहीं रहकर वह प्रातः ही जाल फैला देना चाहता था कि बड़ी संख्या में पक्षी फंस सकें। ज्यों ही वह एक घर के सामने पहुंचा कि पिंजरे में बन्द तोता चिल्ला उठा, "दौड़ो, दौड़ो, पकड़ो, पकड़ो, यह राही जा रहा है। इसे लूट-लो।"

बड़ी कठोर थी इस तोते की जबान। उसकी बोली सुनकर घर का मालिक झट डंडा लेकर बाहर निकल आया। बाहर देखा तो उसका परिचित बहेलिया खड़ा था। लुटेरा उसे देखते ही हंस पड़ा।

यह तुम्हारा तोता तो बहुत बढ़-बढ़ कर बातें करने लगा है। कहां से सीखी इसने ये।"

लुटेरा बोला, "हम प्रतिदिन इसी प्रकार तो बोलते और करते हैं।"

मीठा बोलो

एक उल्लू बड़ी तेजी से उड़ा जा रहा था।

उसे रास्ते में एक चमगादड़ मिल गया। चमगादड़ ने पूछा, "इतनी तेजी से कहां उड़े जा रहे हो?"

उल्लू ने उदास होकर उत्तर दिया, "मैं इस गांव को सदा के लिए छोड़ रहा हूं। किसी दूसरे गांव में जाकर रहूंगा।"

चमगादड़ ने पूछा, "इस गांव में किस चीज़ की कमी है, जो तुम इसे छोड़कर जा रहे हो?"

उल्लू ने उत्तर दिया, "यहां मेरी बोली किसी को अच्छी नहीं लगती। जहां भी बैठता हूं, लोग ढेले मार-मारकर भगा देते हैं।"

चमगादड़ बोला, "मेरे विचार में दूसरे गांव में जाकर रहने से भी बात नहीं बनेगी। हो सकता है, उस गांव के लोगों को भी तुम्हारी बोली अच्छी न लगे।"

उल्लू सोच में पड़ गया। उसे लगा कि चमगादड़ ठीक ही कह रहा है। किन्तु क्या करना चाहिए, यह उसकी समझ में नहीं आया।

इस गांव में वह अच्छी जगह रहता था। भोजन की भी कमी नहीं थी। संगी-साथी भी थे। उसने चमगादड़ से पूछा, "चमगादड़ भाई! फिर तुम्हीं

बताओ कि क्या करना चाहिए ?"

चमगादड़ ने कहा, "मेरी सलाह मानो तो अपनी बोली को बदल लो। मीठी बोली बोलने का यत्न करो। कम बोलने की आदत डालो। बेकार बोलते रहने से भी कोई लाभ नहीं।"

यह बात उल्लू की समझ में आ गई और वह लौट आया।

मां का कहना क्यों नहीं माना

एक चुहिया थी। उसके चार बच्चे थे। एक दिन उसने अपने बच्चों से कहा कि तुम खाने की तलाश में अकेले न जाना। मेरे साथ ही चलना। सभी चूहों ने अपनी मां की बात सुनी और फिर खेलने लगे।

निट्टू शैतान चूहा था। उसने अपनी मां की बातों पर ध्यान नहीं दिया। भूख लगने पर अकेला खाने की तलाश में निकल गया।

घर की मालकिन ने चूहों को पकड़ने के लिए चूहेदान मंगाया था। चूहेदान के अन्दर उसने रोटी के टुकड़े डाले। चूहेदान को उसने सामान रखने के कमरे में रख दिया।

निट्टू भूख से परेशान था। खाने की तलाश में बिल से बाहर निकल आया। कमरे में इधर-उधर दौड़ने लगा। कमरे में उसने चूहेदान देखा। चूहेदान में रोटी के टुकड़े लटक रहे थे। निट्टू चूहेदान से रोटी के टुकड़े निकालने की कोशिश करने लगा। निट्टू ने रोटी के टुकड़े तो पा लिए पर अब वह चूहेदान में था।

निट्टू ने रोटी के टुकड़े खाए और बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगा। हर तरह कोशिश करने पर भी वह बाहर न निकल सका। मालकिन आई।

चूहेदान को उठाकर ले गई और निट्टू को बाहर जंगल में छोड़ आई। निट्टू ने अपनी मां की बात न मानने की सजा पा ली।

सच है, जो अपने बड़ों का कहना नहीं मानते, कष्ट पाते हैं। अच्छे बच्चे सदा अपने बड़ों का कहना मानते हैं।

ठगों से सावधान

एक समय की बात है कि कोई बिल्ली बड़े साफ-सुथरे कपड़े पहनकर, हाथ में माला लेकर, राम ! राम ! करती हुई चली जा रही थी। अभी कुछ ही दूर गई थी कि रास्ते में उसे एक मुर्गी मिली। मुर्गी पहले तो उसे देखकर चकित-सी हुई और फिर साहस कर उसने बिल्ली से पूछा—इतनी सज-धजकर कहां जा रही हो, मौसी ?

बिल्ली ने उत्तर दिया—मैं अपने किए हुए पापों का प्रायश्चित करने जा रही हूं।

मुर्गी ने कहा—मौसी, यदि बुरा न मानो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूं।

बिल्ली ने कहा—भला इसमें मेरा क्या जाता है ? बड़ी खुशी से आओ।

अभी वे दोनों थोड़ी ही दूर पहुंची थीं कि उन्हें एक चूहा मिल गया। चूहे ने पूछा—मौसी, आज सज-धजकर कहां जा रही हो ?

बिल्ली ने उत्तर दिया—बच्चा, मैं अपने किए हुए पापों का प्रायश्चित करने जा रही हूं।

चूहा बोला—मुझे भी अपने साथ ले चलो।

बिल्ली बोली—चलो, अपनी टांगों से चलोगे, हमें क्या ?

तीनों चल पड़े।

थोड़ी दूर ही और आगे चले थे कि एक गुफा दिखाई पड़ी । तीनों ही उस गुफा में चले गए । बिल्ली बोली—तुम यहां बैठो मैं अभी आती हूं ।

बाहर आकर बिल्ली ने एक बड़ा-सा पत्थर उस गुफा के मुंह पर रख दिया, और जल्दी से अन्दर आकर मुर्गी को पकड़कर कहने लगी—आ, पहले तेरे पापों का प्रायश्चित करवा दूं ।—और बिल्ली ने उसकी गर्दन मरोड़कर उसे खाना शुरू कर दिया ।

चूहा यह देखकर मन ही मन सोचने लगा—बड़ी गलती की जो इस पापिन बिल्ली का विश्वास किया । लेकिन वह घबराया नहीं । उसने जल्दी से एक पोली जगह देखकर बिल खोदना शुरू कर दिया ।

जब चूहा जोर-जोर से बिल खोदता, तो बिल्ली सोचती कि शायद चूहा मेरी चापलूसी कर रहा है, और वह कहती—तू मुझे मुंह बना-बनाकर न दिखा, तेरी बारी भी आनेवाली है ।

जब वह मुर्गी को खा चुकी, तो चूहे की ओर लपकी । लेकिन चूहा जल्दी से बिल में छिप गया और कहने लगा—इस प्रकार पापों को दूर करने से तो मैं पापी ही अच्छा ।

इस प्रकार चूहे की होशियारी से बिल्ली मौसी मात खा गई और यह कहती हुई वहां से चल दी—कम्बख्त था बड़ा मोटा-ताजा । मुझे भी धोखा दे गया । मुर्गी बेचारी सीधी और नेक थी । म्याऊं ! म्याऊं !

स्वाभिमानी बालक

वह बालक बड़ा स्वाभिमानो था। किसी का उपकार सिर पर नहीं लेता था।

पाठशाला में धनवानों के बहुत से लड़के पढ़ते थे। वे अच्छा खाते और अच्छा पहनते। पर वह बालक उनके रहन-सहन और खान-पान को देखकर कभी न ललचाता। उसने अपने माता-पिता से कभी यह नहीं कहा कि मुझे भी बढ़िया-बढ़िया कपड़े सिलवा दो। या खाने-पीने की बढ़िया-बढ़िया चीज ले दो। वह बड़ी सस्ती चाल-ढाल से रहता था। शौक उसके दिल को छू भी न गया था।

एक बार गांव में एक नाटक-मण्डली आई। इस बालक के बहुत से मित्र नाटक देखने जाते थे। लेकिन यह बालक कभी उनके साथ नहीं गया। सच तो यह है कि नाटक देखने के लिए उसके पास पैसे ही नहीं थे।

एक दिन उसके एक मित्र ने कहा—"तुम मेरे साथ नाटक देखने चलो। टिकट के दो आने पैसे मैं दे दूंगा।"

बालक पहले तो तैयार नहीं हुआ। परन्तुउस मित्र के बार-बार कहने पर आखिर नाटक देखने चला हो गया। उस मित्र ने अपनी जेब से पैसे देकर इस बालक का टिकट भी खरीद लिया।

किन्तु दूसरे दिन जब दोनों पाठशाला में मिले तो वह अपने पैसे मांगने लगा।

बालक को इस बात की जरा भी उम्मीद नहीं थी। अगर उसे पता होता कि साथी लड़का बाद में अपने पैसे मांगेगा तो वह नाटक देखने ही न जाता।

यह बालक चाहता तो उस मित्र के साथ झगड़ा कर सकता था। कह देता कि तुमने अपनी जेब से पैसे खरचने को कहा था। पर उसने वैसा नहीं किया।

उसने अगले दिन पैसे देने को कहा। दूसरे दिन उसने टिकट की दुअन्नी उस मित्र को दे दी।

यह दुअन्नी उस बालक को एक सप्ताह के जेब खरच के लिए मिली थी। वह जानता था घर से और पैसे नहीं मिलेंगे और मुझे पूरा सप्ताह बिना खर्च के रहना पड़ेगा। उसने यह सब स्वीकार किया। पर साथी का एहसान नहीं माना।

यह गरीब बालक जब बड़ा हुआ तो गोपालकृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने गुणों के कारण एक दिन वह दुनिया में बड़ा आदमी बन गया।

सच्ची योग्यता

आयुर्वेद के पंडित आचार्य नागार्जुन को एक सहायक की आवश्यकता थी। कितने ही आयुर्वेद पढ़े-लिखे युवकों ने अपनी सेवाएं प्रस्तुत कीं। भला कौन ऐसा होगा जो आचार्य नागार्जुन के पास रहकर अपने को भाग्यवान् न माने। पर आचार्य को तो केवल एक ही सहायक चाहिए था। उन्होंने केवल दो युवकों को चुना और उनकी परीक्षा लेकर एक को रखने का निश्चय किया।

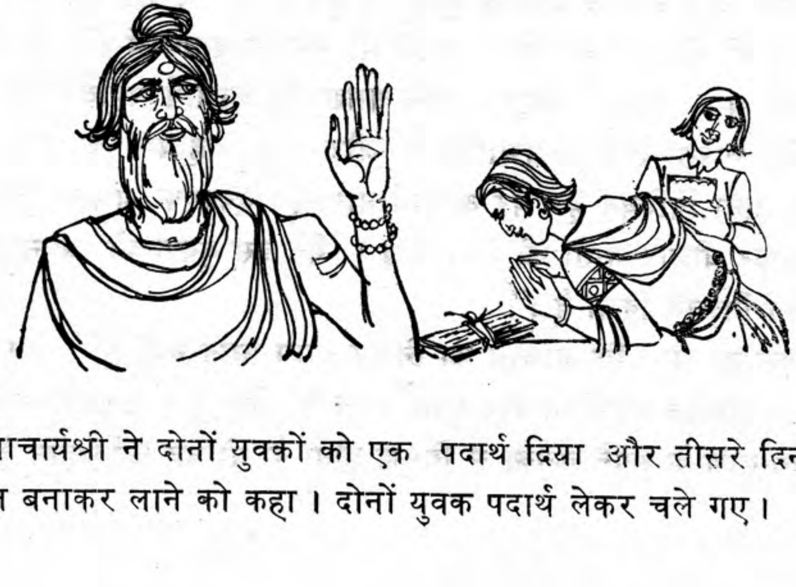

आचार्यश्री ने दोनों युवकों को एक पदार्थ दिया और तीसरे दिन उसका रसायन बनाकर लाने को कहा। दोनों युवक पदार्थ लेकर चले गए।

तीसरे दिन निश्चित समय पर एक युवक तो रसायन तैयार करके ले आया और आचार्यश्री के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया किन्तु दूसरा युवक आकर आचार्य से क्षमा मांगते हुए बोला, "आचार्य महोदय ! मैं रसायन तैयार नहीं कर सका ।"

"कारण ?" आचार्य ने पूछा ।

"पूज्यपाद ! जब मैं यहां से लौटकर जा रहा था तो मुझे मार्ग में एक असहाय बूढ़ा रोगी मिल गया । दो दिन मैं उसकी चिकित्सा करने में लगा रहा । आज वह कुछ स्वस्थ हुआ है । मुझे दो दिन का समय और दें तो बड़ी कृपा होगी ?"

दूसरे युवक ने सोचा कि बाजी मार ले जाने का यह अच्छा अवसर है । वह बोला, "आचार्य प्रवर ! मेरे सामने भी अनेक कठिनाइयां थीं । मेरी पूज्या माताजी बीमार थीं, फिर भी मैंने आपके आदेश को सर्वोपरि माना और सब काम छोड़ रसायन तैयार करने में लगा रहा । परिणामस्वरूप यह रसायन आपके सामने प्रस्तुत है ।"

उसकी बात सुनकर आचार्य मुस्कराते हुए बोले, "अच्छा, यह बात है । तो तुम माता की बीमारी की उपेक्षा करके भी रसायन बनाने में लगे रहे ?"

"जी हां ।" युवक ने कहा । उसने समझा कि आचार्य महोदय मेरी आज्ञा-पालन में तत्परता से बहुत प्रभावित हैं और अब सहायक के पद पर मेरी नियुक्ति होना निश्चित है । पर आचार्य नागार्जुन एकाएक गंभीर होकर बोले, "तुम जाकर बीमार माता की सेवा करो । मैंने इस युवक को अपना सहायक बनाने का निश्चय किया है ।"

युवक को लगा कि आचार्य का निर्णय न्याय-संगत नहीं है ? तब आचार्य ने कहा, "रसायन लोगों को रोग-मुक्त करने के लिए है । उसको बनाने वाला यदि रोग-नाश के अपने कर्तव्य से विमुख होता है, तो वह कर्तव्यहीन है ।"

• •